नियमसार, गाथा ९६ का अन्दर एकत्वसप्तति का कलश है। पद्मनन्दिपंचविंशति शास्त्र है, उसमें यह श्लोक है। वह यह श्लोक है।

केवलज्ञानदृक्सौख्यस्वभावं तत्परं महः।
तत्र ज्ञाते न किं ज्ञातं दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम्।।

आहाहा! **वह परम तेज...** भगवान आत्मा में सर्वज्ञस्वभाव पड़ा है। आहाहा! जिसका स्वभाव सर्वज्ञ है, ज्ञान है, वह ज्ञान सर्वज्ञ पूर्ण ही होता है। ऐसा पूर्ण स्व-स्व अपना ज्ञान, उसका तेज... आहाहा! जिसने स्वज्ञान का तेज जान लिया। उसने क्या नहीं जाना? आहाहा! सूक्ष्म बात है भगवान! लोक से अलग प्रकार है। जिसने **वह परम तेज केवलज्ञान, केवलदर्शन...** त्रिकाली अन्तर की बात है। त्रिकाली केवलज्ञान, त्रिकाली केवलदर्शन यह अन्तर जो त्रिकाल स्वभाव है। आत्मा जैसे त्रिकाली वस्तु है, वैसे उसका स्व-भाव, अपना जो भाव है, वह त्रिकाली है। ऐसा जो त्रिकाली ज्ञान और दर्शन **और केवलसौख्य...** प्रभु तो आनन्द है। आहाहा! वह सच्चिदानन्द है। उसका स्वभाव सच्चिदानन्द है। सत् चिद् ज्ञान आनन्द। है, सत्ता ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से भरपूर सत्ता आत्मा है। जँचना कठिन पड़े प्रभु को। दूसरी बातें अनन्त काल से बैठी है, परन्तु अन्तर आत्मतत्त्व वह क्या है, उसकी बात इसने कभी बैठायी नहीं और उसे बैठाने का विचार भी नहीं किया। आहाहा! वह केवलसुख अकेला आनन्द। केवल शब्द पड़ा है न?

परम तेज केवलज्ञान,... परम तेज केवलज्ञान, परम तेज अकेला ज्ञानस्वरूप प्रभु, ऐसा। **केवलदर्शन...** केवलदर्शन दृष्टा/दर्शन स्वभाव। आत्मा का दर्शन-देखना स्वभाव। केवलदर्शन त्रिकाल पूर्ण स्वभाव और जिसका अनन्त सुख। केवलसुख / अकेला आनन्द। आत्मा वस्तु भी भारी जगत को कठिन पड़ती है। परिचय नहीं होता। अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। सच्चिदानन्द प्रभु है। बोलते तो बहुत हैं ऐसा सच्चिदानन्द-सच्चिदानन्द। परन्तु वह सच्चिदानन्द वे दूसरे भगवान हो गये, वे। मैं नहीं। परन्तु वे हो गये, वे हुए कहाँ से ? उनमें वह शक्ति और सामर्थ्य था, तब उसमें से हुए ? या कहीं बाहर से हुए हैं ? आहाहा! छोटी पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट भरी है, कद में छोटी है, रंग में काली है, तथापि उस छोटी पीर में चौंसठ पहरी अर्थात् सोलह आना अर्थात् रुपया-रुपया अर्थात् पूरा सर्व चरपराहट रस उस पीपर में पड़ा है। पूरा चरपरा रस पड़ा है। भले कद छोटा हो परन्तु अन्दर चरपरा रस और हरा रंग पड़ा है। बाहर में काली दिखती है परन्तु अन्दर में हरा रंग पूर्ण भरा है। वह घोंटने से आता है, वह कहाँ से ? वह अन्दर में है, वह आता है। घोंटने से आता होवे तो कोयले को घोंटने से भी आना चाहिए। उसमें कहाँ है ? घोंटने से आता हो तो कोयला, कंकड़ को घोंटने से भी आना चाहिए। परन्तु उसे घोंटने से अन्दर में है, छोटी पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट और हरा रंग पूरा, सोलह आना, रुपया-रुपया भरा है। चौंसठ पहर अर्थात् चौंसठ पैसा अर्थात् रुपया और सोलह आना। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा चौंसठ पहरी चरपराहट की तरह चौंसठ पहरी चरपराहट (अर्थात्) पूरा अन्तर आनन्द भरा है। आहाहा! अरे रे! कब विचार किया होगा ? घर का विचार छोड़कर बाहर की... सब लगायी। केवलसुख! है ? वह तो केवल आनन्द है, दुःख की गन्ध नहीं। जिसमें दुःख की गन्ध ही नहीं, ऐसा भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, देह से भिन्न, वाणी से भिन्न, कर्म से भिन्न और पुण्य-पाप की क्रिया, राग की क्रिया से भी भिन्न और स्वयं से परिपूर्ण है। पर से भिन्न और अपने से पूर्ण। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा केवलसुख, केवलज्ञान, केवलदर्शन और है ? तीनों शब्द।

केवलसौख्यस्वभावी है। उसे जानते हुए क्या नहीं जाना ? आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा अन्दर, केवलज्ञान, केवलदर्शन और केवलसुख-आनन्द—ऐसा परिपूर्ण सोलह आना, रुपया-रुपया भरा है। उसे **जानते हुए क्या नहीं जाना ?** एक को जानने से

सब जाना। सवेरे एक प्रश्न उठा था न ? भाई ! ऐसा कि केवलज्ञान और केवलदर्शन मैं हूँ, यह तो ऐसा कि नैगमनय से है। ऐसा नहीं है। केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रवचनसार की अन्तिम गाथा में लिया है कि जो मोक्षमार्ग आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु का दर्शन-ज्ञान और चारित्र प्रगट हुआ, वह प्रगट हुआ, उसे हम मोक्षतत्त्व कहते हैं। आहाहा ! यह तो नैगमनय का प्रश्न उठा था न, भाई ! यह पूर्ण है, प्रभु ! आत्मा ! अरे ! कैसे जँचे ? परन्तु वह दिखता नहीं, परन्तु दिखता नहीं—ऐसा निर्णय किसने किया ? आत्मा दिखता नहीं, प्रभु ! वह दिखता नहीं, उसमें किस सत्ता में उसका निर्णय किया ? देखनेवाले में निर्णय किया कि दिखता नहीं। आहाहा ! अरे रे ! कभी घर के विचार नहीं किये और पर की सब लगायी है।

जिसकी सत्ता में ज्ञात होता है, उस जाननेवाले को कौन है जाननेवाला ? वह ज्ञात होता है जिसमें, वह यह ज्ञात नहीं होता। जाननेवाला जानता है, वह जाननेवाला जानता है। जिसमें ज्ञात होता है, वह कौन है ? यह उसकी सत्ता अकेले केवलज्ञान-दर्शन और आनन्द तथा सुखरूप आनन्द है। सूक्ष्म बात है, प्रभु ! आहाहा ! अरे ! ऐसा जो प्रभु ! उसे जिसने अन्तर में जाना, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण सुख, अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, अकेला सुख। केवल लिया है न, इसलिए। अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, अकेला सुख; दूसरी चीज़ ही जिसमें नहीं। ऐसी जो चीज़ भगवान आत्मा, उसे जिसने जाना, उसने क्या नहीं जाना ? प्रभु ! **'एगं जाणइ सब जाणइ'** एक को जाना, उसने सब जाना। क्यों ? - कि उसकी जो ज्ञानशक्ति है, वह पूर्ण है, आनन्द पूर्ण है—ऐसा जाना, तो पर्याय में भी पूर्ण आनन्द और ज्ञान प्रगट होगा ही तो वह अपनी पर्याय भविष्य में प्रगट होगी, तो गत काल को और भविष्य को सबको तीन काल को आत्मा जहाँ जाने। अभी पर्याय में, हों ! यहाँ तो शक्ति की बात है। आहाहा !

जिसकी शक्ति अर्थात् सामर्थ्य। जिसका स्वभाव। स्व अर्थात् अपना अपने से भाव केवल अकेला ज्ञान, दर्शन और सुख भरा है। उसे जानने पर, उसकी पर्याय में जाना, अब उसे क्या बाकी रहा ? आहाहा ! क्योंकि पर्याय जानने पर पूर्ण पर्याय प्रगट होगी ही। और वह पूर्ण प्रगट हो ही और यह पर्याय, सबका पिण्ड आत्मा है। उसे जिसने जाना। आत्मा भी पूरा जाना कब कहलाये ? प्रवचनसार की ४८-४९ गाथा में आता है न ? जिसने सर्व जाना, उसने एक जाना, क्यों ? - कि आत्मा सर्व जाने, आत्मा एक चीज़ है। उसे त्रिकाल

जाने, त्रिकाल। आत्मा एक चीज़ है, उसमें अनन्त ज्ञान आदि भले सुख भी भरा हुआ है परन्तु उसकी पर्याय में देखो तो अनादि-अनन्त पर्याय-अवस्थाएँ हैं। वह भविष्य की भी पर्याय केवलज्ञान और केवलदर्शन उसमें है ही। होगी ही। अन्तर में है, तो पर्यायदशा में होगी ही और होगी, वह सादि-अनन्त रहेगी, तो वह सादि-अनन्त वह अनादि-सान्त यह पर्याय। ऐसे एक आत्मा को जाना, उसने क्या बाकी रखा? आहाहा! क्या कहा यह? समझ में आया?

अन्तर भगवान जिसने पूर्ण जाना, उसे तो ठीक, परन्तु जिसने एक आत्मा को त्रिकाली जाना। पर्याय अवस्था से दशा से त्रिकाल तो उसकी भविष्य की पर्याय, वह तो केवलज्ञान, केवलदर्शन होनेवाली ही है। आहाहा! और वह पर्याय अवस्था सादि-अनन्त होनेवाली है तो उस ज्ञान में तीन (काल), लोकालोक जानने में आते हैं, तो वह ज्ञान की पर्याय और अनादि-सान्त पर्याय अवस्था, अनादि से विकारी है, इसका मोक्ष होने पर अन्त आ जाता है और मोक्ष की दशा की शुरुआत हो जाती है। वह शुरुआत होती है, वह सादि-अनन्त। शुरुआत का अन्त आ जाता है, वह अनादि-सान्त, यह दो पूरा जाना, उसने क्या नहीं जाना? आहाहा! क्योंकि भविष्य की केवलज्ञान की पर्याय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हो जाएँगे। तब तो अनादि-अनन्त आत्मा को जाना, तब कहलाता है। समझ में आया? सूक्ष्म है, भगवान! दुनिया से अलग प्रकार है, बापू! दुनिया क्या है और कहाँ है? कहाँ अटकती है? इतनी अनादि से बाहर में अटकी है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जिसने एकरूप वस्तु अन्दर है, एकरूप ज्ञान, एकरूप दर्शन, एकरूप सुख - ऐसा जिसने जाना, उसकी पर्याय में भविष्य में केवलज्ञान तो होनेवाला ही है। आहाहा! और वह केवलज्ञान सादि-अनन्त होगा। होगा अर्थात् पूरा ऐसा का ऐसा अनन्त काल रहेगा और भूतकाल की अनादि-सान्त विकारी पर्याय तथा सादि-अनन्त वह पूरा-पूरा जाना, तो उस पर्याय में छह द्रव्य भी ज्ञात हो गये, अनन्त सिद्ध भी पर्याय में ज्ञात हो गये, तो उस अनादि-अनन्त पर्याय को, एक पर्याय को अर्थात् एक द्रव्य की पर्याय को जाना, उसमें सब ज्ञात हो गया। शान्तिभाई! सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! ऐसा आत्मा। कौन जाने इसे दो बीड़ी की तलब लगी, दो बीड़ी पीवे, सिगरेट पीवे, तब भाईसाहब को दस्त उतरे पखाने में। ठीक से दो बीड़ी पीवे, उसे क्या कहते हैं तुम्हारे?

सिगरेट। सिगरेट, सिगरेट। आहाहा! ऐसे अपलक्षण को कहना कि तू भाई! तू केवलज्ञान... किस माप में बैठावे? उसे माप लाना... आहाहा! माप कहाँ से लाना?

रविवार का दिन था, उसका पिता पचास आलपाक लाया। उस आलपाक का कोट नहीं होता? कोट-कोट होता है न आलपाक का? ऊँची चीज़, पचास हाथ लाया। लड़का निवृत्त। ऐसे नापा तब सौ हाथ हुआ। बापू! तुम्हारे पचास हाथ खोटे। यह तो सौ हाथ है। बापू कहता है ऐ लड़के! तेरा माप काम नहीं आता, भाई! हमारे माप में तेरा माप काम नहीं आता। तेरा छोटा हाथ वहाँ काम नहीं आता। इसी प्रकार यहाँ सर्वज्ञ परमात्मा और सन्त कहते हैं, तेरे जगत के माप करने में तेरी बुद्धि एकान्त में वह काम नहीं आती। आहाहा! प्रभु! तेरा माप करने में बड़ा मापक चाहिए। आहाहा! अब ऐसी बातें! आहाहा!

एक सर्वस्व है, प्रभु! आहाहा! केवल लिया है न? केवल आनन्द, केवलज्ञान और केवलदर्शन एक चीज़ पूर्ण प्रभु आत्मा को जाना, उसने क्या नहीं जाना? आहाहा! उसे देखते हुए **क्या नहीं देखा?** भगवान पूर्ण दर्शनस्वरूप है, ऐसा देखा। उसकी पर्याय में भी सर्व को देखे, वह पर्याय प्रगट होनेवाली है। **क्या नहीं देखा?** आहाहा! उसने लोकालोक और अनन्त सिद्धों को देखा। आहाहा! यहाँ देखी पर्याय, हों! और देखी है पर्याय शक्ति की ताकत। उस शक्ति की ताकत को जानने पर पर्याय की ताकत ज्ञात हो गयी, उसमें उसे जानना क्या बाकी रह गया? आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म है, बापू! खबर है। दुनिया को इस ओर झुकना कठिन है। क्या हो परन्तु मार्ग ही कोई अलग प्रकार है। पूरा झुकाव, जगत का झुकाव झोंक-झोंक झुकाव अलग प्रकार का है और झुकाव अलग प्रकार की अन्दर की चीज़ है। बाहर का झुकाव जगत का है। यह अन्तर के झुकाव की बात है।

भगवान पूर्णानन्द का नाथ विराजता है। आहाहा! किस माप से मापना? परन्तु जिसने यह मापा, तो उसे कहते हैं, क्या जानना बाकी रह गया अब? क्या देखना बाकी रह गया? आहाहा! और **उसका श्रवण करते हुए क्या नहीं सुना?** आहाहा! **उसका श्रवण करते हुए...** आहाहा! भगवान केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द, पूर्ण प्रभु! वस्तु होती है, वह पूर्ण होती है। वस्तु होती है, वह अपूर्ण नहीं होती। वस्तु होती है, वह विकृत नहीं होती। विकृत नहीं होती, वह अपूर्ण नहीं होती; अपूर्ण नहीं होती तो अविकृत पूर्ण होती है। निर्विकारी पूर्ण होती है, वह निर्विकारी पूर्ण जिसने देखा, और जिसने यह बात सुनी...

आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! प्रभु! तेरे घर की बात है। आहाहा! बाहर की सिरपच्ची कर-करके अनन्त काल से मर गया है। शास्त्र के बहाने भी बाहर में दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा कर-करके मर गया है, वह कहीं वस्तु में नहीं है। वह तो विकल्प-राग है। आहाहा!

जिसने ऐसे रागरहित पूर्णस्वरूप देखा। अरे! जाना। अरे! जाना क्या? सुना। यहाँ तक आया न? आहाहा! प्रभु! तेरी प्रभुता तूने सुनी। सुनी, तब अन्दर से कहे, आहाहा! शरीर, वाणी, मन, जड़, मिट्टी, धूल तो कहीं रह गये। पुण्य-पाप तो कहीं रह गये, वह तो विकार, परन्तु अल्पज्ञता भी कहीं रह गयी। क्योंकि वह कहीं वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! केवल है न? आहाहा! ऐसा भगवान जिसने सुना... आहाहा! ऐसा परमात्मा स्वयं है, पूर्ण सुख से भरपूर, पूर्ण ज्ञान-दर्शन से भरपूर, ऐसा जिसने सुना... आहाहा! है?

उसका श्रवण करते हुए क्या नहीं सुना? आहाहा! यह श्रवण करना, यह कहते हैं। बाकी यह करना... यह करना... यह किया... आहाहा! यह तो सुन-सुनकर कान फूटे। नहीं कहते? 'हरि कथा सुनकर फूटे कान तो भी न आया (हरि का) भान।' आहाहा! कहते हैं कि जिसने यह परिपूर्ण प्रभु है, ऐसा जिसने सुना, उसे अब क्या सुनना बाकी रह गया? आहाहा! प्रभु! अन्दर तेरा स्वभाव। स्व-भाव। अपना नजदीक का भाव, निज त्रिकाली ध्रुव वह अनन्त है। केवल एक ही रूप है, पूर्ण है—ऐसा जिसने सुना, उसने क्या नहीं सुना? आहाहा! उसने सब सुना। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु!

मुमुक्षु : बेड़ा पार हो जाए ऐसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! वस्तु तो ऐसी है। आहाहा! अन्त में तो यहाँ तक रखा। है न? पाठ में है न? '**श्रुते श्रुतम्**' है न? '**तत्र ज्ञाते न किं ज्ञातं दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम्।**' पाठ में, श्लोक में है। आहाहा! प्रभु! तेरी बात, पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान तथा पूर्ण दर्शन। आहाहा! यह तुझे कान में पड़ी और सुना, अब तुझे क्या सुनना है? अब सुनना बाकी क्या रह गया है? जो था, वह कहा। था, वह आया। आहाहा! अरे! द्रव्यश्रुत में यह आया। आहाहा!

शास्त्र में शास्त्रकार ने यह कहा। यह कहा और जिसने सुना। '**तत्प्रति प्रीति चितेन**' प्रीति-रुचि प्रेम से जिसने यह सुना। आहाहा! '**भावि निर्वाण भाजनम्**' वह मोक्ष के योग्य है। आहाहा! इसमें निःसन्देह है। सन्देह करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! जिसे यह बात अन्दर

में जँची, जिसने यह सुना... आहाहा! पूर्ण ज्ञान, ज्ञान अर्थात्? इस शास्त्र का जानना, वह नहीं, हों! जैसे शक्कर का मिठास स्वभाव है, जैसे नमक का खारा स्वभाव है, वह पूरा है और उसमें पर की अपेक्षा नहीं है; इसी प्रकार भगवान का स्वभाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द का पूर्ण है। उसे पूर्ण में पर की कोई अपेक्षा नहीं है। निरपेक्ष तत्त्व ऐसा है। जिसने ऐसी बात सुनी... आहाहा! उसने क्या नहीं सुना, कहते हैं। है? अन्दर है या नहीं? आहाहा!

इसने पाँच करोड़ के पाँच मन्दिर बनाये। तो इसने क्या नहीं किया? यह नहीं आया? अरे! ऐ..! आहाहा! यह नहीं आया। ऐसा तो अनन्त बार किया है। आहाहा! परन्तु तू अपूर्ण ज्ञानवाला भी नहीं। आहाहा! भगवान शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण ज्ञानदर्शन और आनन्द से सुना, उसने क्या नहीं सुना? उसने बारह अंग का सार सुना। आहाहा! उसने बारह अंग में परिपूर्णता कैसी है, वह उसने सुन लिया। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, प्रभु! भाव जरा सूक्ष्म है। आहाहा! अभी यह परिचय नहीं है। अभी बाहर का परिचय बढ़ गया है। बाहर की माथापच्ची, सिरपच्ची। भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण सुख से, आनन्द से, ज्ञान से भरपूर है, उसकी बात पड़ी रही। वर छोड़कर बारात जोड़ दी है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा को छोड़कर, पूर्णानन्द के नाथ को सुनना छोड़कर दूसरा सुना है। 'सुन सुन करके फूटे कान तो भी नहीं आया है भान'। आहाहा!

गाथा बहुत ऊँची है, यह तो अमृत भरा है। अमृत का सागर आत्मा। सागर तो बड़ा असंख्य योजन और करोड़ों योजन में हो, उसे सागर कहते हैं। भगवान! तू क्षेत्र को बड़ा मत मान। उसके स्वभाव की हदरहित स्वभाव है। मर्यादारहित स्वभाव है। उसे मान। क्षेत्र बड़ा है, ऐसा मत मान। क्षेत्र भले शरीरप्रमाण भगवान अन्दर भिन्न अलग चीज़ है परन्तु है उसका स्वभाव बेहद अपरिमित है। आहाहा! परिपूर्ण ज्ञान-दर्शन और सुख से भरपूर भगवान है। दिखाई क्यों नहीं देता? है तो दिखता क्यों नहीं? परन्तु देखा कब है? अन्तर में देखने का प्रयत्न कब किया है? जहाँ है, वहाँ देखने का प्रयत्न किया है कभी? जहाँ इसकी सत्ता परिपूर्ण पड़ी है। सत्ता-अस्तित्व भगवान आत्मा त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु!

सच्चिदानन्द नित्यानन्द अनादि-अनन्त वस्तु आत्मा है। आत्मा नया नहीं होता। है, उसका नाश नहीं होता। है, उसकी आदि नहीं होती। वह है, ऐसा परिपूर्ण सन्मुख का उसने ध्यान कहाँ दिया है? आहाहा! कथाएँ और वार्ताएँ सुन-सुनकर तथा क्रियाकाण्ड की बातें

सुन-सुनकर समय गँवाया है। सब समय गया। मरने का समय फिर थोड़ा रहा, ५०-५०-६० गये, पश्चात् इसे देह छूटने के कितने वर्ष रहे ? देह तो छूट जाएगी। जिस समय में छूटने का वह समय छूट जाने का निश्चित है। जितने दिन-महीने जाते हैं, वे सब मृत्यु के समीप जाते हैं, देह छूटने के समीप जाते हैं। उसमें यह तत्त्व नहीं किया, और बड़ी-बड़ी बादशाही की, करोड़ों रुपयों की आमदनी की और करोड़ों के... आहाहा! बड़े कारखाने लगाये, बड़ी सगे-सम्बन्धियों की जमात इकट्ठी की, पुत्र-पुत्रियाँ और बड़ी जमात इकट्ठी की है। आहाहा!

कहते हैं कि यह सुना, उसे क्या बाकी रहा ? आहाहा! गजब बात की है न! सुनने में, तू पूर्णानन्द का नाथ है, यह तुझमें विकार तो नहीं परन्तु अल्पज्ञता नहीं। यह बात सुनी उसने क्या नहीं सुना ? ऐसा कहते हैं। कहो, यशपालजी! आहाहा! सम्प्रदायवालों को कठिन पड़े ऐसा है। 'वाड़ा बाँधकर बैठे रे अपना पन्थ करने को।' अपना पक्ष करने के लिये वाड़ा बाँधकर बैठे हैं, भगवान एक ओर रह गया। आहाहा! यह यहाँ पूरा हुआ।

श्लोक-१२८

तथाहि ह्न

और (इस ९६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं):—

(मालिनी)

जयति स परमात्मा केवलज्ञानमूर्तिः,
सकलविमलदृष्टिः शाश्वतानन्दरूपः।
सहजपरमचिच्छक्त्यात्मकः शाश्वतोऽयं,
निखिलमुनिजनानां चित्तपङ्केजहन्सः ।।१२८।।

(वीरछन्द)

मुनिजन उर पंकज का हंस सुशाश्वत केवलज्ञान स्वरूप।
सकल विमल दर्शन सुखमय जो जयवन्तो परमात्म स्वरूप॥१२८॥

[श्लोकार्थः] समस्त मुनिजनों के हृदयकमल का हंस ऐसा जो यह शाश्वत, केवलज्ञान की मूर्तिरूप, सकलविमल दृष्टिमय (-सर्वथा निर्मल दर्शनमय) शाश्वत आनन्दरूप, सहज परम चैतन्यशक्तिमय परमात्मा, वह जयवन्त है॥१२८॥

श्लोक -१२८ पर प्रवचन

और (इस ९६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं):—

जयति स परमात्मा केवलज्ञानमूर्तिः,
सकलविमलदृष्टिः शाश्वतानन्दरूपः।
सहजपरमचिच्छक्त्यात्मकः शाश्वतोऽयं,
निखिलमुनिजनानां चित्तपङ्केजहन्सः॥१२८॥

यह तो चित्पंकज का हंस है। आहाहा! जैसे हंस पानी और दूध भिन्न करता है। आहाहा! पाँच सेर दूध और सेर पानी डाला, परन्तु उसकी - हंस की चोंच में खटास होती है, वह ऐसा डाले, वह इकट्ठा पानी पृथक् और दूध का पृथक् दूध का पिण्ड पृथक् पड़ जाता है, पानी पृथक् पड़ जाता है, ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसा भगवान हंस का स्वभाव है। ज्ञानी की पर्याय जहाँ आत्मा सन्मुख झुकायी, वहाँ राग का पानी भिन्न पड़ जाता है और आत्मा भिन्न पड़ जाता है। आहाहा! ऐसा प्रभु! तेरा स्वरूप है। आहाहा! कैसे जँचे? आहाहा! यह चूरमा के दो लड्डू खाता हो और उसमें वापस अरबी हो। अरबी आती है न? क्या कहलाता है वह? भुजिया। और घी में तले हुए। लड्डू और साथ में अरबी। मानो ओहोहो! मानो क्या हुआ! ऐसा प्रभु! तेरी मृत्यु हुई सुन। वहाँ उस पर में तृप्ति मानकर आत्मा का खून पिया है। आहाहा!

आत्मा की तृप्ति में अन्दर पर में तृप्ति नहीं मानता। आहाहा! ऐसी बातें! जिसने

आत्मा के आनन्द की तृप्ति जतलाई-जानी और आनन्द की तृप्ति हुई, उसे चक्रवर्ती का राज और इन्द्र के इन्द्रासन का सुख भी... आहाहा! सड़ी हुई बिल्ली और सड़े हुए कुत्ते जैसा लगता है। आहाहा! आत्मा के आनन्द के समक्ष, आनन्द के अनुभव के समक्ष, इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़े हुए कुत्ते और सड़े हुए बिल्ली जैसे लगते हैं। आहाहा! उसे इनसे कहीं साधारण चीज़ मिली हो जहाँ, वहाँ तो मानो ओहो! कैसे हैं तुम्हारे रिश्तेदार? सुखी हैं। पैसे-टके से सुखी हैं। आहाहा! भाई कहते थे। मलूकचन्दभाई, नहीं? वे कहते थे। बड़ा लड़का है न वहाँ स्वीट्जरलैंड, चार करोड़ रुपये हैं। मलूकचन्दभाई का भाई स्वीटजरलैंड। अहमदाबाद रहते हैं न? मलूकचन्द!

एक बार कहता था। न्याल सुखी है सब, ऐसा कहता था। वहाँ गये होंगे न? गये होंगे। बड़ा बंगला, बगीचा, लड़का नहीं, पति-पत्नी दो हैं। लड़की थी तो विवाह कर दिया। चार-पाँच करोड़ रुपये। न्याल सुखी हैं, कहे। ऐसा कहते होंगे। ऐई! तुम्हारे भाई! न्याल, उनका बड़ा लड़का, छोटा यहाँ मुम्बई, पूनमचन्द। उसके पास चार करोड़ रुपये हैं। अभी लड़के का विवाह किया। बीस लाख की तो एक मोटर लाये थे। बीस लाख की एक मोटर। हमको छोड़ने आये थे। हमें भावनगर आना था न! पन्द्रह दिन पहले की बात है। तब मोटर में बैठाया था। मैंने कहा—इस मोटर की कीमत कितनी?

मुमुक्षु : आप बैठे, उसमें मोटर पवित्र हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। वे लोग ऐसा मानते हैं कि महाराज बैठे, इसलिए पवित्र हुई। मैंने पूछा। हिम्मतभाई थे या नहीं? तुम साथ में नहीं थे? ये भी बैठे थे। साथ में थे। कहा, इसकी कीमत कितनी? बीस लाख की। एक मोटर बीस लाख की। वे तो कहें कि एक पचास लाख की मोटर वहाँ दूसरे को है। कोई सेठिया होगा। पचास लाख की एक मोटर। इसमें लोग मर गये।

मुमुक्षु : जिसके पास बहुत पैसा हो, उसे पचास लाख की क्या कीमत?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह धूल है। अब एक साथ ऐसा टुकड़ा भी आनेवाला नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : इसलिए अभी बिकता हुआ लेकर भोग लेना।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो इस दृष्टि को छोड़ दो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इस

जड़ को रहना होगा, वैसे रहेगा। तुम्हारी सावधानीरूप से नहीं रहेगा। आहाहा! कितने ही केस देखते हैं। आहाहा! यह लाभुभाई का केस लो। कैसा शरीर! अभी ऐसा हो गया है। चल नहीं सकते, बोल नहीं सकते। आहाहा! ऐसे तो कितने ही सुनते हैं। शरीर की क्रिया... कब क्या होगी? यह देह तो परमाणु-मिट्टी है। कब क्या होगी?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **समस्त मुनिजनों के हृदयकमल का हंस...** आहाहा! यह भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त ज्ञान और शान्ति से भरपूर ऐसा आत्मा, वह **समस्त मुनिजनों...** भाषा कैसी ली है? कोई मुनि उसमें से हीन हो, कोई मुनि ऐसे हों, ऐसा नहीं। आहाहा! **समस्त मुनिजनों के हृदयकमल का हंस ऐसा जो यह शाश्वत, केवलज्ञान की मूर्तिरूप,...** अन्तर में आनन्दरूप, केवलज्ञान की मूर्तिरूप हृदय में अन्दर देखने से आनन्द, केवलज्ञान की मूर्तिरूप, आहाहा! भाषा कैसी प्रयोग की?

समस्त मुनिजनों के हृदयकमल का हंस... मुनि इन्हें कहते हैं। स्त्री, पुत्र छोड़कर वस्त्र बदले (छोड़ दिये), इसलिए साधु हो गये, साधु ऐसे नहीं हैं, बापू! आहाहा! उन्हें मुनि नहीं कहा जाता। मुनि उन्हें कहा जाता है कि जिनके हृदय में यह आत्मा हंस राग और चैतन्य के अमृत को भिन्न करके अमृत को पीता है। उसका नाम समस्त मुनि हंस कहा जाता है। आहाहा! जैसे हंस दूध और पानी इकट्ठे हों, वह पानी निकालकर दूध की लच्छी दूध पीता है। उस दूध की लच्छी लेता है, पानी निकाल डालता है। हंस का ऐसा स्वभाव है। ऐसे आत्मा में ऐसा स्वभाव है।

समस्त मुनिजनों के हृदयकमल का... स्वभाव। आत्मा वह तो **हृदयकमल का हंस...** है। अन्दर राग और आत्मा को भगवान दो को भिन्न करता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इस बाहर की प्रवृत्ति के उत्साह में रुक जाए, मूल बात रह जाए। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आता है, अशुभभाव से बचने को शुभभाव होता है। ज्ञानी को भी आता है परन्तु वह जानता है कि बन्ध का कारण है, धर्म नहीं। आहाहा! तथापि कमजोरी के कारण वह भाव आता है, परन्तु वह हंस है - धर्मात्मा तो हंस है। राग को पानी जैसे आत्मा को दूध जैसे दो भिन्न करते हैं। आहाहा! दूध का कोकडू वले, उसमें आत्मा के आनन्द का अनुभव करता है और राग का पानी जैसे वले निकाल डालता है, उसे यहाँ मुनि कहते हैं। आहाहा! ऐसी मुनि की व्याख्या है। है इसमें? है या नहीं?

समस्त मुनिजनों के हृदयकमल का हंस... आहाहा! मुनि स्वयं अपने लिये कहते

थे। नाम नहीं देते, समुच्चय दिया है। आहाहा! समस्त मुनि ऐसे होते हैं। आहाहा! कि **हृदयकमल का हंस ऐसा जो यह शाश्वत,...** नित्य प्रभु केवलज्ञानी। वह तो नित्य आत्मा है, ध्रुव है, कभी उसका नाश हो, ऐसा नहीं है। उसकी कभी उत्पत्ति हो, ऐसा नहीं है। है, उसकी उत्पत्ति क्या? है, उसका नाश क्या? है, उसके पूर्ण स्वभाव से खाली क्या? आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा **शाश्वत, केवलज्ञान की मूर्तिरूप,...** अकेला ज्ञान का स्वरूप ही। मूर्ति अर्थात् स्वरूप। अकेला केवलज्ञान का स्वरूप। वह आत्मा अर्थात् अकेला ज्ञान का स्वरूप। जानने के स्वभाव का जिसका स्वरूप, उसकी वह मूर्ति, उसका स्वरूप। आहाहा!

सकलविमल दृष्टिमय (-सर्वथा निर्मल दर्शनमय)... पहले ज्ञान की बात की, अब दर्शन की। सकल दर्शनमय **सकलविमल दृष्टिमय (-सर्वथा निर्मल दर्शनमय)...** जिसका त्रिकाली निर्मल दर्शन है। आहाहा! **शाश्वत...** वह शाश्वत है। वस्तु है, वह शाश्वत है, नित्यानन्द प्रभु है। पर्याय में, विचार में बदले। विचार, उसकी अवस्था बदले, वस्तुरूप से शाश्वत है। आहाहा! **शाश्वत आनन्दरूप,...** शाश्वत आनन्दरूप ऐसा यह आत्मा है। आहाहा! यह अब आनन्द बाहर में खोजने जाता है। पैसे में, स्त्री में, पुत्र में, इज्जत में,... आहाहा! जैसे सूकर विष्ठा खाता है। वह सूकर नहीं होता? अभी यहाँ आया था। पहले यहाँ नहीं था। वह विष्ठा खोजे, विष्ठा ही खाये। आहाहा! इसी प्रकार पुण्य और पाप विष्ठा समान है, जहर समान है। एक बार विष्ठा कहा था, वह उन्हें ठीक नहीं लगा। परन्तु विष्ठा तो अभी (सूकर द्वारा) खायी भी जाती है। परन्तु यह तो जहर है। पुण्य और पाप दोनों भाव जहर है। आहाहा! इस जहर से भिन्न **शाश्वत आनन्दरूप,...** शाश्वत अन्दर आनन्द—नित्य आनन्द—सहजानन्दस्वरूप। वे स्वामी नारायण कहते हैं, वह नहीं, हों! सहज आनन्द मूर्ति, यह तो आत्मा है। आहाहा!

सहज आनन्दस्वरूप **सहज परम चैतन्यशक्तिमय...** स्वभाविक परम चैतन्यशक्ति अर्थात् वीर्य-बल, उसमय। **परमात्मा वह जयवन्त है।** आहाहा! त्रिकाल जयवन्त वर्तता है। आहाहा! **समस्त मुनिजनों के हृदयकमल का हंस ऐसा जो यह शाश्वत, केवलज्ञान की मूर्तिरूप, सकलविमल दृष्टिमय (-सर्वथा निर्मल दर्शनमय) शाश्वत आनन्दरूप, सहज परम चैतन्यशक्तिमय...** चैतन्यशक्ति। चैतन्य का बल, उसके चैतन्य का बल है, चैतन्य का वीर्य है, उसमें चैतन्य का सामर्थ्य है। आहाहा! उस चैतन्य के वीर्य से पूर्ण भरपूर है। आहाहा! ऐसा आत्मा **परमात्मा वह जयवन्त है।** जयवन्त है, ऐसा कहते हैं।

पर्याय में हमने देखा, वह यह जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पर्याय अर्थात् अवस्था, वर्तमान चलती विचारधारा। उसमें यह देखा तो जयवन्त वर्तता है। यह वस्तु जयवन्त है। आहाहा! ऐसा उपदेश! अध्यात्म का उपदेश सूक्ष्म है। कान में पड़ने पर कठिन पड़ता है। वह बात तो ऐसी करे कि दया पालो, व्रत करो, एक-दूसरे को मदद करो, दु:खी को मदद करो, भूखे को आहार दो, प्यासे को पानी दो, रोगी को औषध दो, दवाखाने में... यह समझ में तो आये। क्या समझना? वह किया कब जा सकता है? वह तो सब पर की-जड़ की क्रिया है। आहाहा!

यहाँ तो अन्दर राग होता है, वह राग ही इसका स्वरूप नहीं है तो और बाहर का यह करूँ... यह करना... यह करना... अन्तर, बहुत कठिन है। आहाहा! शास्त्र में भी ऐसा आता है। सम्यक्त्वी है, वह मन्दिर बनावे, पूजा आदि हो, वह तो संघ का सन्त कहलाता है, उसे संघ का नायक कहा जाता है। पद्मनन्दि पंचविंशति में है। संघ का नायक कहलाता है।

मुमुक्षु : एक चावल जितनी मूर्ति बनाता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; इतनी छोटी मूर्ति बनावे तो भी समकिती है, आत्मज्ञानी है, उसे भान है कि यह क्रिया है, वह राग है, वह राग भी मेरी कमजोरी के कारण आये बिना नहीं रहता, परन्तु वह मेरा स्वरूप नहीं है। मेरा स्वरूप तो उसे जानने-देखने का आनन्द, वह मेरा स्वरूप है, ऐसा जाननेवाला हो, उसे ऐसा राग आता है, उसे पुण्यबन्ध का कारण होता है। आहाहा! बहुत कठिन काम। बाहर का उत्साह उड़ जाए।

परमात्मा वह जयवन्त है। ऐसा जो परमात्मा अन्दर है, वह जयवन्त वर्तता है। त्रिकाली जयवन्त वर्तता है। उसे कोई विकृति, विकार या अपूर्णता है ही नहीं। ऐसा पूर्ण प्रभु अन्दर जयवन्त वर्तता है। परमात्मा (जयवन्त वर्तता है)। देखो! परमात्मा कहा। वह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! मुनि के हृदय का हंस जयवन्त वर्तता है। आहाहा! यहाँ तो आत्मा की बात निश्चय से करे तो, ऐई! यह तो आत्मा की-आत्मा की लगायी है। कहीं दूसरी बात तो मिलती नहीं, बापू! क्या हो? करना तो यह है। इसके बिना सब व्यर्थ है। आहाहा! दूसरे लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करे, बाहर में इज्जत निकाले, इससे कहीं आत्मा का हो ऐसा नहीं है। आत्मा में उसमें कुछ भव घटे, ऐसा नहीं है। इसमें तो आत्मा के भव घटें, ऐसी बात है। यह ९६वीं गाथा हुई।

गाथा-९७

णियभावं णवि मुच्चइ परभावं णेव गेण्हए केइ।
जाणदि पस्सदि सव्वं सो हं इदि चिंतए णाणी।।९७।।

निजभावं नापि मुञ्चति परभावं नैव गृह्णाति कमपि।
जानाति पश्यति सर्वं सोऽहमिति चिन्तयेद् ज्ञानी।।९७।।

अत्र परमभावनाभिमुखस्य ज्ञानिनः शिक्षणमुक्तम्। यस्तु कारणपरमात्मा सकलदुरितवीर-वैरिसेनाविजयवैजयन्तीलुण्टाकं त्रिकालनिरावरणनिरञ्जननिजपरमभावं क्वचिदपि नापि मुञ्चति, पञ्चविधसन्सारप्रवृद्धिकारणं विभावपुद्गलद्रव्यसंयोगसञ्जातं रागादिपरभावं नैव गृह्णाति, निश्चयेन निजनिरावरणपरमबोधेन निरञ्जनसहजज्ञानसहजदृष्टिसहजशीलादिस्वभावधर्माणामाधाराधेय-विकल्पनिर्मुक्तमपि सदामुक्तं सहजमुक्तिभामिनीसम्भोगसम्भवपरतानिलयं कारण-परमात्मानं जानाति, तथाविधसहजावलोकेन पश्यति च, स च कारणसमयसारोऽहमिति भावना सदा कर्तव्या सम्यग्ज्ञानिभिरिति।

तथा चोक्तं श्रीपूज्यपादस्वामिभिः ह्न

(अनुष्टुप्)

यदग्राह्यं न गृह्णाति गृहीतं नापि मुञ्चति।
जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्वसम्वेद्यमस्म्यहम्।।

निजभाव को छोड़े नहीं, किंचित् ग्रहे परभाव नहिं।
देखे व जाने मैं वही, ज्ञानी करे चिन्तन यही॥९७॥

अन्वयार्थ : [निजभावं] जो निजभाव को [न अपि मुंचति] नहीं छोड़ता, [कम् अपि परभावं] किंचित् भी परभाव को [न एव गृह्णाति] ग्रहण नहीं करता, [सर्वं] सर्व को [जानाति पश्यति] जानता-देखता है, [सः अहम्] वह मैं हूँ— [इति] ऐसा [ज्ञानी] ज्ञानी [चिंतयेत्] चिन्तवन करता है।

टीका : यहाँ, परम भावना के सम्मुख ऐसे ज्ञानी को शिक्षा दी है।

जो कारणपरमात्मा (१) समस्त पापरूपी बहादुर शत्रुसेना की विजय-ध्वजा को लूटनेवाले, त्रिकाल-निरावरण, निरंजन, निज परमभाव को कभी नहीं छोड़ता; (२) पंचविध (-पाँच परावर्तनरूप) संसार की वृद्धि के कारणभूत, [१]विभाव-पुद्गलद्रव्य के संयोग से जनित रागादिपरभाव को ग्रहण नहीं करता; और (३) निरंजन सहजज्ञान-सहजदृष्टि-सहजचारित्रादि स्वभाव धर्मों के आधार-आधेय सम्बन्धी विकल्पों रहित, सदा मुक्त तथा सहज मुक्तिरूपी स्त्री के सम्भोग से उत्पन्न होनेवाले सौख्य के स्थानभूत—ऐसे [२]कारणपरमात्मा को निश्चय से निज निरावरण परमज्ञान द्वारा जानता है और उस प्रकार के सहज अवलोकन द्वारा (-सहज निज निरावरण परमदर्शन द्वारा) देखता है; वह कारणसमयसार मैं हूँ—ऐसी सम्यग्ज्ञानियों को सदा भावना करना चाहिए।

इसी प्रकार श्री पूज्यपादस्वामी ने (समाधितन्त्र में २०वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

जो अग्राह्य को ग्रहण करे नहिं, छोड़े नहीं ग्रहीत कभी।
सब को सब प्रकार से जाने स्वसंवेद्य वह हूँ मैं ही॥

[श्लोकार्थ :] जो अग्राह्य को (-ग्रहण न करनेयोग्य को) ग्रहण नहीं करता तथा ग्रहीत को (-ग्राह्य को, शाश्वत् स्वभाव को) छोड़ता नहीं है, सर्व को सर्व प्रकार से जानता है, वह स्वसंवेद्य (तत्त्व) मैं हूँ।

गाथा - ९७ पर प्रवचन

गाथा ९७।

णियभावं णवि मुच्चइ परभावं णेव गेण्हए केइ।
जाणदि पस्सदि सव्वं सो हं इदि चिंतए णाणी।।९७।।

१- रागादिपरभाव की उत्पत्ति में पुद्गलकर्म निमित्त बनता है।

२- कारणपरमात्मा 'स्वयं आधार है और स्वभावधर्म आधेय हैं' ऐसे विकल्पों रहित है, सदा मुक्त है और मुक्तिसुख का आवास है।

नीचे हरिगीत-

निजभाव को छोड़े नहीं, किंचित् ग्रहे परभाव नहिं।
देखे व जाने मैं वही, ज्ञानी करे चिन्तन यही॥९७॥

आहाहा! एक-एक श्लोक कैसे हैं! देखो न!

मुमुक्षु : स्वयं की भावना का है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु है न? स्वयं, स्वयं के लिये बनाया हुआ है। **परम भावना के सम्मुख...** परम भावना। परमस्वरूप भगवान पूर्णानन्द की एकाग्रता - भावना, उसके **सम्मुख ऐसे ज्ञानी को शिक्षा दी है।** आहाहा! पूर्ण आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप शाश्वत ऐसे ज्ञानी को... आहाहा! उसकी भावना के सन्मुख। उसकी एकाग्रता के सन्मुख। उसे यहाँ शिक्षा दी है। एकाग्रता के सन्मुख है, उसे शिक्षा दी है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)